विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ५, रविवार, तारीख १४-९-१९८०
वचनामृत -३८२, ३८४ प्रवचन-३३

आज क्षमा का दिन है। दस प्रकार का धर्म है न? वह चारित्र का धर्म है। और चारित्र है, वह सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। तो क्षमा भी सम्यग्दर्शन बिना होती नहीं। वह बात कहते हैं, देखो! (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होदि॥३९४॥

बहिन का बाद में पढ़ेंगे, इसके बाद। पहले जो कोई आत्मा अन्तर में तो सहजात्म आनन्दस्वरूप निष्क्रिय परमब्रह्म आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा, उसका अनुभव हो, उसका अनुसरण करके आनन्द का अनुभव हो, उसका नाम तो प्रथम धर्म समकित कहते हैं। आहाहा! क्षमा तो बाद की बात है। पहले प्रभु देह—रजकण यह तो मिट्टी से तो भिन्न है। कर्म से भिन्न है, पुण्य-पाप से भिन्न है। उसमें जो ज्ञान और आनन्द भरा है, उस आनन्द का वेदन होना, वह प्रथम धर्म है। बाद में क्षमा होती है। सम्यग्दर्शन बिना क्षमा होती नहीं।

कहते हैं कि **जो मुनि, देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि से रौद्र (भयानक घोर) उपसर्ग करने पर भी...** घोर उपसर्ग हो। परन्तु अन्तर में आनन्द में धर्मात्मा तो अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त है। आहाहा! जिसने पुण्य-पाप का विकल्प-राग, उसका भी जिसको स्पर्श नहीं है, छुआ नहीं,... आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव करने पर, उपसर्ग करने पर भी **क्रोध से तप्तायमान नहीं होत है...** आहाहा! भगवान शान्ति का सागर, अकषाय स्वभाव कहो कि शान्ति कहो या वीतरागमूर्ति कहो। वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। उसकी दृष्टि और अनुभव होने के बाद परीषह और उपसर्ग आने पर भी क्रोध-अरुचि-क्रोध नहीं करना, उसका नाम प्रथम क्षमा, धर्म का नाम क्षमा है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। क्षमा उसका नाम। हठ से क्षमा करना, आत्मा के भान बिना हठ की क्षमा करना। वह तो अनन्त बार की है। आहाहा!

भगवान सहजात्म स्वरूप अन्दर, जो निष्क्रिय राग, दया, दान, व्रत, राग की क्रिया भी जिसमें नहीं है, ऐसी चीज़ का अनुभव होने पर शान्तरस आने पर प्रतिकूल परीषह आने पर भी क्रोध करते नहीं। आहाहा! उसका नाम क्षमा, उसका नाम यह जो दस प्रकार का धर्म है, वह चारित्र का प्रकार है। चारित्र समकित बिना होता नहीं। आहाहा! और समकित अपना चैतन्यस्वरूप भगवान, उसके अवलम्बन बिना होता नहीं। आहाहा! उतनी क्षमा की बात कही।

अब बहिन के वचनामृत। ३८२ ? ३८२। बहिन के वचनामृत पढ़ते हैं न ? यह तो अलौकिक बात है। बहिन तो अन्तर में से रात्रि में थोड़ा-थोड़ा बोले होंगे और ६४ बाल ब्रह्मचारी बहनें हैं, उनमें से नौ बहनों ने लिख लिया। उसमें से बाहर आया। हिम्मतभाई ने बनाया। अपने पढ़ते हैं। ३८२। सूक्ष्म है, भगवान!

आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है;... आहाहा! यह देह तो भिन्न है, कर्म भिन्न है, पुण्य-पाप का विकल्प भी भिन्न है। अपना स्वरूप अपने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है। आहाहा! उसमें थोड़ी सूक्ष्मता दिमाग में आयी थी। रात्रि को कहा था। उत्पाद जो आत्मा में होता धर्म का, उस उत्पाद को किसी की अपेक्षा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा में धर्म की जो उत्पत्ति होती है, शान्ति की अथवा अरे..! अज्ञान की, वह जो उत्पाद है, उसमें कोई पर की अपेक्षा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा से यहाँ शुद्ध या अशुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई!

१०२ गाथा, प्रवचनसार। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा में जो अनन्त गुण हैं, उसमें जिस समय पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उस समय वह होगी। उत्पाद को ध्रुव और व्यय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ सुने ? बाहर में यह करो, वह करो और वह करो। आहाहा! आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार भगवान, उसकी शुद्ध पर्याय अपने लक्ष्य से हो तो उस उत्पाद को कोई अपेक्षा नहीं है। निमित्त अनुकूल है तो उत्पाद हुआ, अरे..! धर्म की-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय का उत्पाद, उसे अपने द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं है। प्रभु! सूक्ष्म पड़ेगा। आहाहा! अरे..! बात भी सुनी नहीं।

अपना द्रव्य और गुण जो त्रिकाल है, उसमें जो उत्पाद होता है, उस उत्पाद को

निमित्त और संयोग की तो अपेक्षा नहीं है, परन्तु उस उत्पाद को द्रव्य की, गुण की, व्यय की अपेक्षा नहीं है। अरेरे.. ! ऐसी बात कभी सुनी न हो। उत्पाद, व्यय। पूर्व की अवस्था का व्यय होता है। उसको भी कोई अपेक्षा नहीं है। व्यय को भी किसी की अपेक्षा नहीं है। उत्पाद की अपेक्षा भी व्यय को नहीं है। और ध्रुव की भी अपेक्षा व्यय को नहीं है। व्यय स्वतन्त्र अपना (होता है)। क्योंकि उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन सत् है। तीनों सत् है। तो सत् को पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अनन्त काल व्यतीत हुआ। अनन्त-अनन्त चौबीस, अनन्त पुद्गल परावर्तन किये, परन्तु आत्मा आनन्दमूर्ति.. धर्म की उत्पत्ति की पर्याय की अपेक्षा में व्यवहाररत्नत्रय जो राग है, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसकी भी अपेक्षा नहीं है। अरे.. ! प्रभु ! वह उत्पाद स्वतन्त्र सत् है। आहाहा ! उस उत्पाद को अनन्त गुण की पर्याय का जो उत्साह होता है, एक समय में एक ही पर्याय नहीं उत्पन्न होती है, प्रत्येक द्रव्य में एक समय में अनन्त गुण की उत्पाद पर्याय उत्पन्न होती है। उस उत्पाद को किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! निमित्त की अपेक्षा नहीं है कि निमित्त आवे तो यह होता है। ऐसी अपेक्षा है नहीं। उसकी तो नहीं, परन्तु उसका जो त्रिकाली द्रव्य-गुण ध्रुव है, ध्रुव की भी उत्पाद को अपेक्षा नहीं है। आहाहा! १०२ गाथा, प्रवचनसार, उसमें यह कहा है। सूक्ष्म बात, भाई! अभी तो क्रिया और प्रवृत्ति की बात, यह करो, वह करो, यह करो। मार्ग बहुत अलौकिक है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव। ध्रुव अर्थात् कायम रहनेवाला। वह भी निरपेक्ष है। उसको भी उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु, उसको उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् तीनों होकर प्रमाण का विषय है। परन्तु ध्रुव को उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं, उत्पाद-व्यय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है; वह नित्य रहकर पलटता है।** है ? कायम रहकर पलटत है। नित्य-कायम अपने से स्वत: नित्य ध्रुव रहकर पलटता है अर्थात् पर्याय में-अवस्था में बदलता है। आहाहा! यह बहन की वाणी है। चम्पाबेन। वहाँ आयी है न ? यह तो करीब ८०००० पुस्तक छप गये। तीन हजार तो अफ्रीका में गये। अफ्रीका। आहाहा!

मुमुक्षु :- अभी बीस हजार छपना बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह सब पूरी गिनती हो गयी। अफ्रीका में तीन हजार पुस्तक

और लोगों को प्रेम.. ओहोहो! हम अफ्रीका गये थे अभी। ४५० तो करोड़पति एक गाँव में है। ४५०। और १५ तो अरबपति हैं। पच्चीस लाख का मन्दिर बनाने का है। पन्द्रह लाख पहले किये थे, हमारे जाने के बाद दूसरे ४५ लाख किये। साठ लाख रुपया इकट्ठा हुआ है।

मुमुक्षु :- आपने वहाँ लकड़ी घुमायी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो उस समय... वह बात तो आयी न? जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी। किसी से नहीं। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! ऐसे ही हम दिगम्बर है और हम जैन हैं, ऐसा तो अनन्त बार माना, उसमें कुछ है नहीं।

यहाँ कहते हैं, **नित्य रहकर...** वस्तु जो है आत्मा, वह नित्य रहकर-ध्रुव रहकर **पलटता है।** ध्रुव... कहा न? ध्रुव और उत्पाद-व्यय। उत्पाद-व्यय पलटता है और ध्रुव नित्य-कायम रहता है। वह नित्य रहकर पलटता है। आहाहा! पलटने में पर की कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख रुपया जाता है, तो देनेवाले का भाव हुआ तो जाता है, ऐसा नहीं। गजब बात है, प्रभु जड़ की पर्याय उत्पाद उस समय जानेवाला था तो वह उत्पाद हुआ है। उस उत्पाद का कारण देनेवाला तो है नहीं, परन्तु उस उत्पाद का कारण द्रव्य भी नहीं। ऐसा स्वतन्त्र उत्पाद है। आहाहा! कहाँ सुना है? वीतराग मार्ग... सेठ! आहाहा!

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धरस्वामी भगवान तो विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी आयी है। बहिन वहाँ थे न। सेठ के पुत्र थे। वहाँ से आये हैं। आहाहा!

यह कहते हैं, **नित्य रहकर पलटता है। उसका नित्यस्थायी स्वरूप...** आहाहा! आत्मा का कायम रहनेवाला स्वरूप। उत्पाद-व्यय पर्याय है। नित्य ध्रुव है। नित्यस्थायी कायम रहनेवाली चीज़ **रीता नहीं...** खाली नहीं है। आहाहा! क्या कहा? वह नित्य वस्तु जो अन्दर है - भगवान आत्मा, वह खाली नहीं है। अनन्त गुण से भरा है। आहाहा! अरे..! अनन्त चिन्तामणि रत्न, अनन्त गुण के कमरे भरे हैं। वह आ गया? अब आयेगा। **उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं...** भगवान आत्मा का नित्य स्वरूप जो ध्रुव है, वह खाली नहीं। अनन्त गुण से भरा है। आहाहा! **पूर्ण भरा हुआ है।** पूर्ण गुण से भरा हुआ है। आहाहा! एक-एक आत्मा सब भगवान (हैं)।

उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त गुण के कमरे। एक-एक गुण में अनन्त पर्याय होने की ताकत (है)। एक-एक गुण में अनन्त पर्याय-अवस्था होने की ताकत है। ऐसे अनन्त गुण के कमरे हैं। आहाहा! अरेरे..! प्रभु! तूने तेरी बात सुनी नहीं। तू कौन है? कहाँ हो? कितना हो? बाहर की बातों में हो.. हा.. हो.. हा। यह करो, व्रत करो, उपवास करो, गजरथ चलाओ, रथ करो, मन्दिर बनाओ,.. आहाहा! वह होती है क्रिया उसके कारण से। और करानेवाले का भाव हो, करा सकता नहीं। भाव शुभ है, पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ अफ्रीका में दो हजार साल में कोई (जिनमन्दिर) नहीं था। पहली बार दिगम्बर मन्दिर होगा, पच्चीस लाख का। साठ लाख इकट्ठे हुए हैं। बहुत पैसेवाले। साधारण लाख, दो लाखवाला तो गरीब कहलाता है। दस लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख, करोड़... धूल है वह सब तो, कहा।

मुमुक्षु :- आपने छू मन्तर किया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, वह तो बहुत प्रेम था तो गये थे। उनका बहुत प्रेम था, इसलिए गये थे। बाकी तो... ९१ साल हुए। ९१। ९० और १। वहाँ लोगों का बहुत प्रेम था, बहुत भाव। नहीं तो परदेश है, वहाँ सर्दी बहुत है। हम एक महीना वहाँ रहे - २६ दिन, यहाँ जैसा मौसम था। वे लोग भी चकित हो गये। आप यहाँ आये तो वहाँ का मौसम ही बदल गया। मौसम के कारण कोई नुकसान नहीं हुआ। नहीं तो शरीर कोमल। सर्दी लग जाए।

यहाँ तो कहते हैं कि, नित्यस्थायी प्रभु, आहाहा! उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। आहाहा! एक आत्मा में अनन्त गुण के कमरे। एक-एक कमरे में अनन्त पर्याय होने की ताकत। आहाहा! कौन सुने और किसे दरकार है? ये बाहर की होली पैसा-लक्ष्मी करोड़, अरब धूल। उसमें पाँच-पचास लाख एक साल में मिले तो हो गया, उसमें घुस जाए। हमने किया, हमने किया, हमने किया। हमने बराबर व्यवस्था की तो व्यवस्थित हुआ, बिल्कुल मिथ्यात्व है। आहाहा!

वही यहाँ कहा न? वस्तु स्वयं उत्पादव्ययध्रुव स्वरूप है। उसे दूसरा कोई बदले,

पलटे.. आहाहा! तो उसका पलटन स्वभाव कहाँ गया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो पर्यूषण का प्रथम दिन है। आहा..! अरे..! उसने कभी अन्दर चैतन्य कौन है? (उसे जानने का प्रयत्न किया नहीं)। उसमें अनन्त गुणों के कमरे भरे हैं। एक-एक गुण में अनन्ती पर्याय-अवस्था होने की ताकत है। ऐसे अन्दर गुण हैं। आहाहा! फिर भी उस गुण के कारण से भी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। गुण तो ध्रुव है, पर्याय अध्रुव है। पर्याय क्रम से होती है, क्रमसर, क्रमबद्ध होती है। एक के बाद एक, जो होनेवाली है, वही होती है। उसको किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

वह कहते हैं, **उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। उस अद्भुत ऋद्धियुक्त...** अद्भुत ऋद्धियुक्त **नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहाहा! अन्तर अनन्त ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे। वहाँ दृष्टि दे तो सम्यग्दर्शन होगा। बाकी सब धूल है। जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। चौरासी लाख के अवतार अनन्त बार किये। आहाहा!

आचार्य तो ऐसा भी कहते हैं... आहा..! क्या नाम? वादिराज। वादिराज ने स्तुति की। कोढ़ था न? फिर उन्होंने भगवान की स्तुति की। कोढ़ मिट गया सहज ही। मिटनेवाला था। परन्तु वे वादिराज ऐसा कहते थे कि, अरे..! प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ। नरक का, निगोद का, ढाई द्वीप के बाहर तिर्यंच में मारामारी, सिंह और बाघ खा जाए, प्रभु! ऐसे दुःख को याद करता हूँ तो आत्मा में घाव लगता है। मुनिराज ऐसा कहते हैं। वे तो आनन्द-आनन्द में हैं। जो भी थोड़ा संज्वलन का कषाय है, चौथा कषाय। तीन कषाय का अभाव है। चौथा संज्वलन का (कषाय) है। कहते हैं कि याद करता हूँ पूर्व के दुःखों को, तो घाव लगता है कि आहा..! अरेरे! ऐसे दुःख मैंने सहन किये। अब उस दुःख में-भव में जाना नहीं है। अब वह भव नहीं करना है। अब वह भव नहीं करने हैं। आहा..! क्योंकि भव का भाव और भव, इससे रहित ऐसा भगवान... आहाहा! क्या कहा?

भव और उसका भाव, दो से रहित आत्मा है। आहाहा! दो से रहित प्रभु आत्मा है। ऐसे आत्मा का अन्दर में ध्यान करने से और उसका अनुभव करने से भव का अन्त आ जाता है। इसके सिवा भव का अन्त कोई करोड़ों, अरबों रुपये खर्च कर दे... आहा..! या

व्रत, नियम और तप, बारह-बारह महीने के उपवास करे, अनन्त बार किया, उसमें कुछ आत्मा के भव का अभाव हो, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहाहा! अन्दर में नित्य स्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द परमात्मस्वरूप से विराजमान शक्ति से है, वहाँ दृष्टि दे। भव का अन्त आयेगा। उसके बिना भव का अन्त कोई क्रियाकाण्ड से या बाहर में पैसा खर्च करने से, करोड़, अरब खर्च करने से (नहीं आयेगा)। राग की मन्दता की हो और उसमें भी वह पैसा मेरा, ऐसा माननेवाला अजीव को जीव माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह तो मिट्टी-धूल है। उसको अपना है, मेरा है.. आहाहा! वह धूल मेरी है, प्रभु चैतन्यमूर्ति (है), आहा..! वह धूल मेरी है, ऐसा माननेवाला... आहाहा! (उसे) अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप की खबर नहीं।

अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे... अन्दर दृष्टि दे। आहाहा! कहीं दृष्टि देने की जरूरत नहीं है। आहाहा! पर्याय पर भी दृष्टि मत दे। दृष्टि पर्याय है, परन्तु उस पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर दे। आहाहा! है? **अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहा..! माल है यह तो। मक्खन है। अरे..! पर की दया करने निकल पड़ा, परन्तु स्व की दया नहीं की। आहा..! मैं चार गति में भटकता हूँ। चौरासी के अवतार में कौआ, कुत्ता, भालू, शूकर, जैसे अवतार अनन्त-अनन्त किये और जब तक मिथ्यादृष्टि है, उसके पेट में अनन्त अवतार करने की ताकत है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप...** प्रभु कायम त्रिकाली वहाँ दृष्टि दे **तो तुझे सन्तोष होगा...** आहाहा! वहाँ आनन्द और शान्ति अन्दर भरी है। वहाँ तुझे सन्तोष होगा। बाह्य में तो कहीं तू है ही नहीं। परन्तु एक समय की पर्याय में भी तू पूरा नहीं है। पूरा तो नित्य ध्रुव में है। वहाँ दृष्टि देने से तुझे सन्तोष होगा। आहाहा! **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'।** आहाहा! मैं प्रभु! मैं तो कृतकृत्य ध्रुव हूँ। मुझे कुछ करना है, ऐसा मैं हूँ नहीं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! है? **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'।** भाषा तो सादी है, सेठ! भाषा तो सादी है। भाषा ऐसी कोई व्याकरण (जैसी नहीं है)। भाव... भाव गहरे हैं। आहाहा!

अरे..! अनन्त काल व्यतीत हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।'

अनन्त बार मुनि दिगम्बर हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आहाहा! अरे..! आत्मज्ञान बिना वह पंच महाव्रत भी दु:खरूप हैं। पंच महाव्रत और मुनि के अट्ठाईस मूलगुण राग है, दु:खरूप है, जहर है। अरर..र..! ऐसी बात! अमृत का सागर भगवान, उससे वह भाव विरुद्ध है। विकल्प है, राग है, वृत्ति है। आहा..! तो वहाँ स्थिति छोड़ दे। मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ। आहाहा! ध्रुव। मुझे कोई कार्य करना है, ऐसी मैं चीज़ नहीं हूँ। ऐसी पर्याय में दृष्टि द्रव्य पर दे। आहा..! द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव पर दृष्टि देना, वह ध्रुव नहीं है। दृष्टि तो पर्याय है। पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर दे। आहाहा!

उसमें स्थिर होने से... क्या कहते हैं? दो बात। मैं तो सदा कृतकृत्यु हूँ। वस्तु तो कृतकृत्य हूँ। ध्रुव जो है वस्तु तो कृतकृत्य हूँ। कृतकृत्य अर्थात् कुछ करना ऐसा मेरी चीज़ में है नहीं। मैं कृतकृत्य ही हूँ। परन्तु **उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा।** आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! आहा..! सब भगवान हैं। देह को मत देख, वाणी को मत देख तो अन्तर तो सब भगवान ही हैं। आहाहा!

कहते हैं, वस्तु आत्मा जो नित्य वस्तु, वह तो कृतकृत्य ही है। नित्य को कुछ करना है, वह तो है नहीं। है? **'मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ'।** आहाहा! **उसमें स्थिर होने से... उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा।** आहाहा! भाषा देखो! नित्यानन्द प्रभु ध्रुव वस्तु नित्य जो कायम रहनेवाली चीज़ है, वह तो कृतकृत्य ही है। उसमें कुछ करना है, ऐसा है नहीं। परन्तु कृतकृत्य वस्तु पर दृष्टि देने से... आहाहा! उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में भी तुझे कुछ करना है, वह बाकी नहीं रहेगा। पूर्णानन्द की दशा तुझे प्रगट हो जाएगी। कृतकृत्य - सब कार्य पूरे हो गये। पूरा कार्य है, ऐसा भगवान नित्य है। उसमें स्थिर होने से... आहाहा! पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में पीछे कुछ करना बाकी नहीं रहेगा। आहाहा!

प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर में भरा है, वह पर्याय में आयेगा, यदि स्थिर हुआ तो। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! बाहर की बातों में सन्तोष और बाहर की बातों में महत्ता और महिमा। आहाहा! भगवान अन्तर महा आनन्द महिमा का धनी, जिसकी महिमा का पार नहीं, वह महिमावन्त कृतकृत्य वस्तु है। कार्य कोई करना, वह तो वस्तु में

हे नहीं। वस्तु तो पूर्णानन्द है। उसमें स्थिर होने से पर्याय में कृतकृत्य हो जाएगा। पर्याय में भी नया काम करना, ऐसा नहीं नहीं रहेगा। तू स्थिर हो जा, केवलज्ञान हो जाएगा। आहाहा! उपाय यह। बाह्य क्रियाकाण्ड और प्रवृत्ति कोई उपाय नहीं है। आहाहा! लाईनें तो बहुत कम थी। चार और दो, सवा छह पंक्ति थी। अब, ३८३ ? ३८४ ?

तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं। अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ? तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर तू तृप्त हो जायेगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा॥३८४॥

३८४ है। यहाँ लिखा है। ३८४। ३८३ बीच में छोड़ देना। **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** आहाहा! किसे पड़ी है ? चौरासी (लाख) अवतार में भटकते हुए अनन्त बार अरबोंपति राजा हुआ, अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक का अहमिन्द्र हुआ, आहाहा! अनन्त बार सातवीं नरक का नारकी हुआ और अनन्त बार निगोद में रहा। आहाहा! परन्तु कभी उसने अपनी ऋद्धि अन्दर में क्या है, उस ओर दृष्टि दी ही नहीं। पहले तो यह बात सुनने मिलना मुश्किल है। आहा..! सुनने मिले तो रुचि होती नहीं। आहाहा! रुचि होने के बाद उसमें स्थिरता होती है, तब कृतकृत्य हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म लगे। बाहर में यह करूँ, यह करूँ... यह करूँ। बाहर की कर्ताबुद्धि तो मिथ्यात्वबुद्धि है। आहाहा!

अपने आत्मा में दया, दान के भाव का कर्तापना, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! पर

की दया तो पाल सकता नहीं, पर की दया मैं पाल सकता हूँ। वह मिथ्यात्व भाव है। परन्तु पर की दया का भाव आया, वह राग और हिंसा है। क्योंकि भगवान आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान से भरा पड़ा प्रभु है। आहाहा! उसमें पर की दया पाल तो सकता नहीं, आहाहा! परन्तु भाव आया कि मैं पर की दया पालूँ, वह राग है, हिंसा है। तेरी चीज़ की हिंसा है, प्रभु! क्यों? **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** तेरी चीज़ प्रगट करने में पर का सहारा, पर निमित्त का सहारा नहीं लेना पड़ता। आहाहा! ऐसी बात।

तेरे आत्मा में निधान... अनन्त गुण का शान्ति, आनन्द का निधान ठसाठस भरपूर भरा है। **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये...** क्या कहते हैं अब? **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** क्या कहा यह? अनन्त गुण हे तो रहने के लिये अनन्त क्षेत्र चाहिए, ऐसा है नहीं। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उसमें अनन्त गुण रहते हैं। शरीरप्रमाण असंख्य प्रदेश भिन्न हैं। गुण अनन्त हैं, प्रदेश असंख्य हैं। तो अनन्त गुण को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र नहीं चाहिए। आहाहा! है? **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** आहाहा! अरे..! उसने निज निधान की बातें सुनी नहीं है। करने का तो करे कहाँ से? अरेरे! जिन्दगी चली जाती है। जो-जो दिन, महीने जाते हैं, वह मृत्यु के समीप जाते हैं। क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है। समय, क्षेत्र, काल जिस स्थान में देह छूटनेवाला है, वह नक्की-निश्चित है। आहाहा! उसकी पर्याय में भी निश्चित है और भगवान ज्ञान में देखते हैं कि इस स्थान में यह देह छूटेगा। आहाहा! तो जितने महीने और दिन जाते हैं, वह देह छूटने के मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा! शोभालालजी चले गये, देखो! कैसा शरीर था, कैसा प्रेम था बेचारे को। यहाँ आते थे। बहुत प्रेम। आहाहा! हम तो उस दिन पहली बार सुना। नहीं तो उसका शरीर तो कैसा था। सेठ का शरीर तो लोहवाला दुर्बल था। लेकिन शरीर क्या करे? जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह हुए बिना तीन काल में नहीं रहती। आहाहा! निरोग शरीर है तो उसे मृत्यु के लिये देर लगेगी, ऐसा है नहीं। भाई! आहाहा!

यहाँ एक दस साल का लड़का था। कोई रोग नहीं, शरीर में रोग नहीं, निरोग। मुझे यहाँ कुछ होता है, बस! इतना किया, दस मिनिट में देह छूट गया। हम पहले जिस मकान में ठहरे थे न? हीराभाई का मकान। उनके लड़के का लड़का। उनके लड़के का लड़का,

दस साल की उम्र। कोई रोग नहीं, ऐसे बैठा था। यहाँ कुछ होता है, डॉक्टर कुछ कहते हैं, डिप्थेरिया कहते हैं। दस मिनिट रहा, बस, देह छूट गया। वह तो उसी समय छूटने का काल था। उसमें कुछ आगे-पीछे ऐसा किया, ध्यान रखा होता तो ऐसा होता... आहाहा! वह अज्ञानी की कल्पनाएँ हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं,...** आहाहा! है? असंख्य प्रदेश। जैसे माला में मणका होता है, ऐसे आत्मा में असंख्य प्रदेश है। प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं। पूरा नहीं, पूरा गुण तो पूरे असंख्य प्रदेश में है। उसका अंश। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण का अनन्त अंश। आहाहा! अरे..! घर की ऋद्धि का देखा नहीं, सुना नहीं, उसकी महिमा की नहीं। पर की महिमा छोड़ी नहीं। पर की महिमा कभी छोड़ी नहीं, अपनी महिमा की नहीं। आहाहा!

यह कहा, **असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है?** आहाहा! है? **तुझमें ऐसे निधान हैं,...** चौथी पंक्ति है। **तो फिर तू बाहर क्यों जाता है?** आहा..! **तुझमें है, उसे देख न!** आहाहा! तेरे में है, उसको देख न। तेरे में नहीं है, उसे देखने-जानने में तेरा काल चला गया। आहाहा! तेरे में जो चीज़ नहीं है, उसे देखने-जानने में काल चला गया। आहाहा! परन्तु तुझमें है, उसे देख। आहाहा! प्रभु अन्दर अनन्त गुण का भरा प्रभु, करना तो यह है। सब क्रियाकाण्ड और बाहर की बातें व्यवहार की है। पुण्यबन्ध का कारण है। जन्म-मरण उसमें खड़े हैं। आहाहा!

तुझमें क्या कमी है? आहाहा! उसमें आता है न? भजन आया न?

प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा।
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, प्रभु मेरे तू सब बाते पूरा।
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तू किण बाते अधूरा?

कब है तू अधूरा? आहाहा! ऐसी बातें। यहाँ तो एक थोड़ा मान मिले तो, बस! जहाँ पाँच-पचास लाख, दो करोड़ मिले वहाँ... मानो.. ओहो..! अपने बढ़ गये। आहाहा!

तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है,... आहा.. ! पूर्ण आनन्द है। तू सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! सत् रहनेवाला। सत् अर्थात् रहनेवाला। चिद् और ज्ञान। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। आहाहा! तेरे में तो सच्चिदानन्द प्रभु भरा है। आहाहा! अरेरे! **तुझमें पूर्ण सुख है,...** आहाहा! **पूर्ण ज्ञान है,...** तेरे स्वभाव में पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द है। आहाहा! **सब कुछ है।** जो कुछ तू कहता है, वह सब अन्दर में है। अनन्त पुरुषार्थ, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता.. आहाहा! सब कुछ है। आहाहा! बाहर की महिमा और अन्दर की बात सुननी भी मुश्किल पड़े। आहाहा!

सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! सुख और ज्ञान तो तेरी चीज़ है ही, परन्तु कोई भी वस्तु... आहाहा! **बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है।** आहाहा! एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर। आहा.. ! आनन्द का घर प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द को धारण करनेवाला परमात्मा स्वयं, अप्पा सो परमप्पा, वही परमात्मा है। आहाहा! उसमें प्रवेश कर। **एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर,...** आहाहा! बाहर तो अनन्त बार गया। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। आहाहा! शान्ति, सुख, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता, सब तेरी शक्ति में पड़ा है। आहाहा! बात लगे रूखी, माल तो यह है। बाकी दुनिया को प्रसन्न करने के लिये, यह करो, वह करो, यह करो, वह करो। करना है, वहाँ मरना है। कर्ता होना, एक राग का विकल्प का भी कर्ता होना, वहाँ आत्मा को मरणतुल्य कर दिया। आहाहा! क्योंकि आत्मा जो ज्ञाता-दृष्टा है, तो कर्ता हुआ तो उसको ना कही कि नहीं, तू ऐसा नहीं है। अर्थात् उसका निषेध किया। निषेध किया, वह मरणतुल्य किया। कलशटीका में आता है कि आत्मा को मरणतुल्य कर दिया है। आहाहा! नाश तो होता नहीं, नित्य है तो नाश तो होता नहीं। परन्तु अपनी पर्याय में पर का आदर करता है और अपना अनादर कर दिया। आहाहा!

एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर,.. आहा.. ! आत्मा में गहरे उतरने पर, **सम्यग्दर्शन होने पर,...** आहाहा! **सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे...** आहाहा! तेरे निधान.. आहाहा! तुझे दिखायी देंगे। तेरा

निधान तुझे दिखायी देगा। आहाहा! **और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** निधान तो पूर्ण है, ऐसा प्रतीत में आया, देखने में आया। परन्तु **सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर...** आहाहा! वेदने में, त्रिकाली निधान ध्रुव वेदने में नहीं आता। क्या कहा? त्रिकाली ध्रुव जो अनन्त गुण हैं, वह वेदने में नहीं आते। वेदने में तो उस ओर की प्रतीति, ज्ञान और रमणता की पर्याय वेदने में आती है। पर्याय का वेदन होता है, ध्रुव का वेदन होता नहीं। आहाहा!

वह अपने पहले आ गया। वेदन पर्याय का होता है, ध्रुव का वेदन नहीं। ध्रुव तो शाश्वत चीज़ पड़ी है। अनन्त-अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भण्डार। परन्तु उस ओर झुकाव करके जो स्थिरता होती है, श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता होती है, वह वेदन (है)। आहाहा! परन्तु वेदन का अवलम्बन नहीं है। आहाहा! और ध्रुव का वेदन नहीं है। आहाहा! क्या कहा? ध्रुव चीज़ है, उसका वेदन नहीं। वह तो नित्य ध्रुव है। उस ओर लक्ष्य करके जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय निर्मल प्रगट होती है, उसका वेदन। तो पर्याय का वेदन है, उसका आलम्बन नहीं; आलम्बन ध्रुव का, वेदन पर्याय का। पर्याय का आलम्बन नहीं, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! ऐसी बात।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्, वह वस्तु। परन्तु जो पर्याय है, उसका वेदन है। ध्रुव का वेदन नहीं होता, ध्रुव तो नित्य है। आलम्बन नित्य का है, वेदन का आलम्बन नहीं है। आहाहा! त्रिकाली भगवान का आलम्बन और वेदन पर्याय का। आलम्बन पर्याय का नहीं, ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! अरेरे..! ऐसी चीज़ अलौकिक चीज़ रह गयी। उसकी दरकार नहीं की। बाहर की प्रवृत्ति में जिन्दगी व्यतीत करके अरे..! आत्मा चला जाता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)